JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अप्रमाद

डॉ. कन्हैया लाल चौधरी

सारांष–सामान्यतया समय का अनुप्रयोग या दुरुप्रयोग न करना अप्रमाद है। धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र में अप्रमाद का विवेचन प्राप्त होता है। धम्मपद के अप्प–मादवग्ग में अप्रमाद सम्राट अशोक बौद्ध हुआ था। इस वर्ग में बारह गाथाऐं है जिनमें अप्रमाद को निर्वाण का साधक तथा प्रमाद को मृत्युपद कहा गया है। आर्यो के कर्त्तव्य–क्षेत्र में तत्पर, उत्साह या उद्यो में प्रवीण बुद्धिमान् दूरदर्शी तथा दृढ़ के कर्त्तव्य–क्षेत्र में तत्पर ; उत्साह या उद्योग में प्रवीण बुद्धिमान, दूरदर्शी तथा दृढ़ प्रयत्न वाले धैर्यवान् व्यक्ति सर्वोत्तम कल्याण स्वरूप निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

महत्तवपूर्ण शब्द–मघ, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा।

अध्ययन की ३६ गाथाओं में अन्तिम पंक्ति बार–बार यही दोहराई गई है कि 'समय' गोयमापमायए। गौतम स्वामी जैसे महान् प्रधान गणधर को सम्बोधित करते हुए समय–मात्र भी प्रमाद न करने का जो सन्देश दिया गया है, वह वास्तव में समस्त प्राणियों के लिए है। यहाँ गौतम का नाम तो उपलक्षण मात्र है। लेकिन अन्तिम गाथा में यह जरूर कह दिया गया है कि अर्थ और पद से सुशोभित एवं सुकथित बुद्ध (पूर्णज्ञ) की अर्थात् भगवान् महावीर की वाणी को सुनकर राग–द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि – गति को प्राप्त हुए। इससे पहले की २६ गाथाओं में जो प्रमाद न करने का महान् प्रबोध दिया है, उसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। जिस प्रकार वृक्ष में लगा हुआ पत्ता कुछ समय के बाद अपनी हरियाली को त्याग करके सफेद और पीला होता हुआ एक दिन वृक्ष से सदा के लिए अलग हो जाता है उसी प्रकार यह जीव भी न्यूनाधिक आयुमर्यादा को पूरा करके यह वर्तमान शरीर बहुत चंचल एवं अस्थायी है। पता नहीं कि यह किस वक्त जवाब दे दे। अतः विचार–शील पुरुषों को अपने साधुजनोचित धार्मिक कृत्यों में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो प्रमादी जीव हैं वे समय का दुरुपयोग करने से अन्त में बहुत पश्चाताप करते हैं, परन्तु समय के अतिक्रमण के बाद पश्चाताप निरर्थक है। कुशा के अग्रभाग पर टिका हुआ ओस का बिन्दु उज्जवल मोती की सी शोभा को धारण किये हुए होता है, उसी प्रकार इस शरीर पर जब यौवन का चक्र आता है तब पश्चाताप निरर्थक है। कुशा के अग्रभाग पर टिका हुआ ओस का बिन्दु उज्ज्वल मोती की–सी शोभा को धारण किये हुए होता है, उसी प्रकार यह जीवन भी सर्वथा अचिरस्थायी है। जिस प्रकार ओस के बिन्दु का सौन्दर्य उसके पतन के साथ ही विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मनुष्य–जीवन के साथ ही इस सौन्दर्य का भी अन्त हो जाती है अर्थात् कुशाग्रलग्न जल–बिन्दु के समान क्षणमात्र स्थायी यह मनुष्य–जीवन है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को धर्मानुष्ठान में क्षणमात्र भी प्रमाद का सेवन नहीं करना चाहिए। जीवों की आयु दो प्रकार की है, एक निरूपक्रम, दूसरी सोपक्रम। जो किसी बाहर के निमित्त से न टूटे, किन्तु अपनी नियत मर्यादा को पूर्ण करके समाप्त हो वह निरूपक्रम आयु है तथा जो किसी बाह्य निमित्त के मिलने से अपनी नियत मर्यादा को पूर्ण किये बिना बीच में ही टूट जाये, उसे व्यवहारनय की अपेक्षा से सोपक्रम आयु कहते है। संसार में निरूपक्रम आयुवाले जीवन तो स्वल्प है, विशेष संख्या तो सोप की रहती है, फिर व्यक्ति प्रमाद वाले नीचे के

गुणस्थानों में आ जाता है प्रमाद पाँच प्रकार का बतलाया गया है। कहीं 6 प्रकार का भी। प्रमाद के पाँच प्रकार है। मघ, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा।

१. मघ आसवित भी आत्मचेतना को कुण्ठित करती है, इसलिए प्रमाद कही जाती है।

२. विषय पाँचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन।

३. कषाय क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार प्रमुख मनोदशाएँ, जो अपनी तीव्रता और मन्दता के आधार पर १६ प्रकार की होती है, कषाय कही जाती है। इन कषायों के जनक हास्यादि १ प्रकार के मनोभाव उपकषाय है। कषाय और उपकषाय के भेद मिलकर २५ होते है।

४. निद्रा अधिक निद्रा लेना, निद्रा–समय का अनुप्रयोग है।

५. विकथा जीवन के साध्य और उनके साधना–मार्ग पर विचार न करते हुए अनावश्यक चर्चाएँ करना। विकथाएँ चार प्रकार की हैं (१) राज सम्बन्धी और और (४) देश–सम्बन्धी। इस तरह प्रमाद के अन्तर्गत विषय के रूप और कषाय को सम्मिलित कर लेने से कर्मबन्ध का वह मुख्य कारण बन जाता है। इसलिए प्रमाद से बचे रहने और अप्रमत साधना करने का विधान किया गया है। अप्रमत अर्थात्, जागरूकता : आत्मोन्नति के लिए सबसे पहले जागरूकता की आवश्यकता होती है। महावीर का जीवन अप्रमत था। वे सतत आत्म–जागरण में लीन रहते थे। उत्तराध्ययनसूत्र में समय–मात्रा भी प्रमाद, न करने का जो महान् सन्देश भवान् महावीर ने दिया है। वह साधकों के लिए पुनः पुनः स्मरणीय है। इस ग्रन्थ के दसवें इसी प्रकार 'उत्तराध्ययनसूत्र' के चतुर्थ अध्ययन में प्रमाद के त्याग और अप्रमाद के सेवन का सुन्दर उपदेश है। प्रमाद का त्याग किस विचार को लेकर करना चाहिए, इस विषय का वर्णन इस गाथा में प्रस्तुत है–संसार की टूटी हुई प्रायः हर एक वस्तु किसी न किसी प्रकार से जोड़ी जा सकती है किन्तु टूटा हुआ जीवन किसी प्रकार के यत्न से भी साधा नहीं जा सकता। यहाँ तक कि इन्दु, महेन्द्र आदि भी टूटी हुई आयु का सन्धान नहीं कर सकते। इसलिए धर्म के अनुष्ठान में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो जीव प्रमत्त हैं, प्रमादी हैं, हिंसक हैं, सावध कर्मों का अनुष्ठान करने वाले है और इन्द्रियों के बशीभूत है, वे मृत्यु के समय किसकी शरण में जाएं, किसका आश्रय ग्रहण करें इस बात का विवेकीजनों को अवश्य ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार धर्म के आचरण में समय की प्रतिज्ञा कभी नहीं करनी चाहिए अपितु प्रमादरहित होकर शीघ्र भोगने के समय धन के द्वारा उन्हें छुटकारा नहीं मिल सकता। तब परलोक में तो उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा ही करना व्यर्थ है। इसलिए लोक और परलोक दोनों में ही कर्मजन्य दुःख की निवृत्ति में धन से किसी प्रकार न्यायोचित मार्ग को भूलकर कुमार्ग का अनुगामी होता हुआ अधिकांश दुःख ही दुःख उठाता है। इस प्रकार स्वयं अप्रमत रहकर जीवन व्यतीत करने का आदेश उत्तराध्ययन में किया गया है। प्रमाद में निद्रा तथा अप्रमाद में जागरण है। दूसरे शब्दों में, निद्रा, मृत्यु और जागरण जीवन है। इसलिए आशुप्रज्ञावाला ज्ञानी साधक होते हुए लोगों में भी प्रतिक्षण जागता रहे। प्रमाद का एक क्षण के लिए भी विश्वास न करें। समय भयंकर है, शरीर दुर्बल है, अतः भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमादी होकर विचरण करना चाहिए। यद्यपि भारण्ड नामवाला पक्षी आजकल प्रसिद्ध नहीं है और न ही वह आजकल कहीं पर देखने में आता है। मान्यतानुसार इस पक्षी का और न ही वह आजकल कहीं पर देखने में भाँति ही होता है परन्तु उसकी दो गर्दन होती हैं। वह सदा एक ही मुख से खाता है और यदि कभी प्रमादवश वह दोनों मुखों से खाने लग जाता है तो मर जाता है। अतः वह इसी भय से कभी प्रमाद नहीं करता किंतु सदा अप्रमत्त रहता है। इसी प्रकार प्रमाद के वशीभूत हुआ साधु भी अपने संयम से पतित हो जाता है। अतः संयमशील पुरुष को जीवों की ही है। अतः इन सोपक्रम आयु वाले जीवों को लक्ष्य में रखकर भगवान कहते है कि हे गौतम! आयु बहुत कम है और उसमें अनेक प्रकार के विघ्न है, अर्थात् आयु को बीच में ही तोड़ देने वाले आतंक, शस्त्र, जल अग्नि, विष, भय और शोक आदि अनेक विघ्न विद्यमान है। पता नहीं कि किस समय इन उपद्रवों के द्वारा इस जीवन में अपने आत्मा से पृथक् कर दे और इस काम में समयमात्र भी प्रसाद

न करें। यही इसके दूर करने का उपाय है। इस सारे कथन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य–जन्म का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। यदि यह मिल गया तो इसको सफल करने के लिए अहर्निश धर्मकृत्यों के आचरण में तत्पर रहना चाहिए और क्षणभर भी प्रमाद में नहीं करना चाहिए। प्रमाद की बहुलता से यह जीव अनेक प्रकार के ऊँची–नीच कर्मों का बन्ध करता है। तथा मनुष्य–गति की प्राप्ति में प्रतिबन्ध करने वाले कर्मों का उपार्जन करता है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रकारों ने संसार–परिभ्रमण का हेतु प्रमाद को कहा है। अतः प्रमाद का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। शरद ऋतु का जल जिस प्रकार अत्यन्त शीतल, निर्मल और मनोहर होता है परन्तु चन्द्र–विकासी कमल कीचड़ से उत्पन्न होकर और जल के द्वारा वृद्धि पाकर उससे पृथक रहता है अर्थात् उसमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम्हारा स्नेह भी अत्यन्त निर्मल होने से धर्मराग है। परन्तु उस प्रशस्त राग का भी तेरे को परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि प्रशस्त राग भी पुण्यबन्ध का कारण होने से मुमुक्षु पुरुष के लिए त्याग करने योग्य है। इसलिए सर्वप्रकार के स्नेह से रहित होने के वास्ते तेरे को सदैव प्रमाद–रहित होना चाहिए। मनुष्य–जन्म आर्यकुल, परिपूर्ण इन्द्रियाँ, उत्तम धर्म–श्रवण और श्रद्धा प्राप्त होना दुर्लभ है। इसलिए त्यागे हुए मित्र, बन्धु और धनसमूह को पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न का निषेध किया गया है। अर्थात् जब इनको हेय समझकर एक बार इनका परित्याग कर दिया तो फिर दूसरी बार उनको प्राप्त करने की जघन्य लालसा करना किसी प्रकार से भी उचित नहीं है। इस प्रकार की जघन्य लालसा आत्मा को सर्वथा अधः पतन की ओर ले जाने वाली है। अतः इस त्यागवृत्ति को दृढ़ रखने के लिए मुमुक्षुजनों को सदा ही अप्रमत रहना चाहिए। धम्मपद के अप्पमादवर्ग में ही केवल अप्रमाद का वर्णन मिलता हैं जबकि उत्तराध्ययनसूत्र के चौथे, दसवें तथा बत्तीसवें अध्ययन में प्रमाद तथा अप्रमाद का वर्णन मिलता है। इसलिए प्रमाद अर्थात् आत्म–विस्मृति बेमान और आलस्य की अवस्था को छोड़कर अप्रमाद अर्थात् जागरूकता तथा आत्मजागरण को अवस्था से साधना करने का विधान किया गया है।

संदर्भ सूची

1. अप्पमादो अमतपदं पमादो मचुनोपदं।
2. अप्पमात्तान मीयान्त थे पमत्ता यथामत्ता।। धम्मपद २१।
3. वही, २२१ तुलनीय उत्तराध्ययन, ३२।१।
4. नाणस्स सव्वस्सपासणाए अन्नाण–मोहस्स विवजणाए।
   रास्स दोस्स यांरणं एन्तसेक्खं समुवेइमोक्ख।।
5. अलराध्ययन, १०। १।
6. वही, १०।२।
7. उत्तराध्ययन, निर्युक्ति, १६०।
8. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार–दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १, पृ. ३६१।
9. वही।
10. उत्तराध्ययन्, ४१२।
11. वही। ४। ५।
12. वही । ४। ६।
13. उत्तराध्ययन्, १०१३।

14. वही, १०११४१

15. वही, १०१२६ तुलनीय, धम्मपद, २६४१।

16. उत्तराध्ययन। १०१४, ६, १७, १६, १९।